

तुम पर के कर्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सब के एक साथ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत ॥
यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुम को बस पिछान।
वह पाता है कैवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान ॥
विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनन्द-धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं नि. स्वाहा।
(दोहा)

पर का कुछ नहीं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ, मेटो सकल विभाव ॥
(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

अशरीरी सिद्ध भगवान

(तर्ज) - (करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना)

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे ॥टेक॥
सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन ॥
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे ॥१॥
रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निष्कुल, मायादि रहित निश्छल ॥
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे ॥२॥
रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो ॥
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे ॥३॥
भविजन तुम-सम निज-रूप, ध्याकर तुम-सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते ॥
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे ॥४॥